International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-02-2021, Accepted: 15-03-2021, Published: 30-04-2021
Volume 7, Issue 2, 2021, Page No. 115-118

सांख्य एवं योग में बंध एवं मोक्ष की अवधारणा

हर्षवर्धन गोस्वामी
एसोसिएट प्रोफेसर, एम.एम.एच कालेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय दर्शन शास्त्रों का मुख्य लक्ष्य वही है जो मनुष्य के जीवन का है। मनुष्य के जीवन में दुःख के अनुभव के साथ ही उसकी निवृत्ति के उपायों के लिए जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है। समय–समय पर जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए जीवन यात्रा के भिन्न–भिन्न स्तरों में साधक को क्रमशः दुःख निवृत्ति के कुछ अंशों का भी अनुभव होता रहता है और इसी से प्रोत्साहित होकर साधक एक भूमि से दूसरी भूमि पर जाने के लिए प्रयत्न करता रहता है, जिसे मानव जीवन का व्यावहारिक रूप कहा जाता है और यही बात सिद्धांत रूप में 'सांख्य दर्शन' में है। सांख्य के अनुसार वैदिक यज्ञ अहिंसा के नियम का उल्लंघन करते हैं। जब यज्ञ किया जाता है तो हम स्वर्ग प्राप्ति करा सकते हैं। जहाँ से पुण्यों से क्षय होने पर साधक को लौटना पड़ता है। यह कर्मकाण्ड विवेक ज्ञान के उदय में सहायक नहीं होते। विवेक ज्ञान को ही मोक्ष स्वीकार करने के कारण कर्मों के प्रति सांख्य का दृष्टिकोण प्रायः वैसा ही है जैसा कि शंकर का है। शुभाशुभ कर्म हमें क्रमशः स्वर्ग और नरक की प्राप्ति करा सकते हैं। कैवल्य की प्राप्ति नहीं। कैवल्य अज्ञान दूर होना है, क्योंकि केवल ज्ञान के उदय होने से भी संभव है। बंधन का कारण अज्ञान है और इसका नाश केवल ज्ञान प्राप्ति से ही होता है। ज्ञान और केवलज्ञान से ही कैवल्य प्राप्त होता है। सांख्य के अनुसार अष्टांग योग का अभ्यास विवेक ज्ञान के उदय में सहायक है। पुरूष और प्रकृति में द्वैत ज्ञान ही कैवल्य है।

मूल शब्दः मोक्ष, बंध, दर्शन, साख्य, ख्वैतन्यमय

प्रस्तावना
सांख्य दर्शन भारत का प्राचीनतम् दार्शनिक सम्प्रदाय है किंतु केवल यही इसकी प्रतिष्ठा का कारण नहीं है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि सांख्य दर्शन अन्य भारतीय दर्शनों की तुलना में सर्वाधिक प्रभावशाली रहा है। कहा भी गया है, 'नास्ति सांख्य समं ज्ञानं' अर्थात् सांख्य के समान और कोई ज्ञान नहीं है।

केवल भारतीय विद्वानों ने ही नहीं, पाश्चात्य विद्वानों ने भी सांख्य दर्शन की भूरि–भूरि प्रशंसा की है जैसे गार्बे लिखते है, ''संसार के इतिहास में सर्वप्रथम कपिल सिद्धांतों (सांख्य–मत) में ही मानव–मस्तिष्क की पूर्ण स्वतंत्रता एवं अपनी शक्ति में उसका पूर्ण विश्वास प्रगट हुआ है। भारतवर्ष के दार्शनिक शास्त्रों में सांख्य सर्वाग्रगण्य है।''

सांख्य दर्शन के दार्शनिक विचारों पर चर्चा करने के पूर्व सांख्य शब्द का अर्थ क्या है; यह जानेंगे –

1. सांख्य का शब्दार्थ हैः संख्या संबंधी अथवा आंकलन (गणना) करने वाला। इस शाब्दिक अर्थ के आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि इस दर्शन में चूँकि ऐसे तत्वों की संख्या गिनी जानी है, जिनका ज्ञान हमें मोक्ष दिलाने वाला है, इसलिए इसे सांख्य कहा जाता है। तत्वों की गणना करने के कारण ही भागवत् में इसे तत्वगणकं अथवा तत्वसंख्यान् कहा गया है।
2. सांख्य का एक अर्थ सम्यक् ख्यानम् अर्थात् सम्यक् ज्ञान अथवा पूर्ण विचार भी कहा जाता है, किंतु यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल जानकारी नहीं है। यहाँ ज्ञान का अर्थ वह विवेक हैं, जो आत्मा से अविद्या का निकास करके (निकालकर) आत्मा को मुक्त करता है। इसके लिए प्रकृति और पुरूष के स्वभाव का, दोनों की पृथकता का ज्ञान होना आवश्यक है। यहाँ उल्लेखनीय है कि विद्वानगण प्रायः सांख्य के इस दूसरे अर्थ को अधिक महत्वपूर्ण बतलाते है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार यह सैद्धांतिक अनुसंधान के द्वारा अपने परिणामों तक पहुँचता है, इसलिए सांख्य कहलाता है।

सांख्य के संस्थापक
महर्षि कपिल को सांख्य दर्शन के संस्थापक होने का श्रेय मिला है। महर्षि कपिल भारतीय परम्परा में सर्वाधिक सम्मानित ऋषियों में स्थान रखते हैं। कृष्ण द्वारा गीता में कहना – ''सिद्धानां कपिलो मुनिः'' (गीता 20/26) अर्थात् सिद्धोंमें मैं कपिल हूँ; कपिल को परम सिद्ध घोषित करता है। इनके दिव्य गुणों के कारण ही महाभारत में इन्हें 'परमर्षि' कहा गया है। कपिल को कहीं ब्रम्हा का मानस–पुत्र; कहीं विष्णु का पाँचवा अवतार, कहीं अग्निदेव का अवतार स्वीकृत किया गया।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् में भी कपिल का नाम आया है। यहाँ उपनिषदकार कहते हैं – ''जो व्यक्ति आदि काल में उत्पन्न कपिल के सिद्धांत को जानता है, उसे ज्ञान और कीर्ति मिलती है।''

कपिल की प्रशंसा विदेशी विद्वानों ने भी की है। मैक्समूलर जब कुछ प्राचीन काल में से प्रचलित भारतीय मनीषियों के नाम की चर्चा करते हैं, तब उनमें कपिल का भी नाम लेते हैं। उनके शब्दों में, ''कपिल, व्यास, गौतम कुछ नाम बड़े प्राचीन काल से प्रचलित थे।''

कपिल की कृतियाँ
सामान्यतया सांख्य दर्शन को प्रतिपादित करने वाले ग्रंथ 'तत्व–समास' एवं 'सांख्य–सूत्र' कपिल कृत माने जाते हैं, किन्तु अनेक विद्वानों को इस पर आपत्ति है।

अन्य सांख्य दार्शनिक
कपिल के बाद सर्वप्रमुख सांख्य विचारक ईश्वरकृष्ण (दूसरी शताब्दी) हुए, जिनकी लिखी सांख्य–कारिका इस दर्शन का आधार ग्रंथ है। उनके बाद कुछ प्रसिद्ध सांख्य दार्शनिक है;

गौड़पाद (सांख्यकारिका भाष्य), वाचस्पति मिश्रा (तर्क कौमुदी), विज्ञान भिक्षु (सांख्य–प्रवचन भाष्य) आदि।

कपिल की शिष्य–परम्परा में केवल दो नाम है आसुरि एवं पंचशिखाचार्य। आसुरि उनके साक्षात् शिष्य और पंचशिखाचार्य प्रशिष्य अर्थात् आसुरि के शिष्य थे पर इनके ग्रंथ नहीं मिलते है।

सांख्य इतिहास

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल की दो रचनाओं का पता चलता है, ये हैं: तत्व–समास तथा सांख्य–सूत्र। सांख्य दर्शन की व्यवस्थित व्याख्या ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका में की गई है, जो इस दर्शन का सबसे प्रमाणिक ग्रंथ है। 'सांख्यकारिका' पर सबसे प्रसिद्ध टीका वाचस्पति मिश्र की 'सांख्य तत्व कौमुदी' है। सांख्यकारिका पर अनेक टीकाएं गौड़पाद का 'भाष्य' 'माठरवृत्ति', जयमंगला और नारायणस्वामीकृत 'सांख्यचन्द्रिका' उपलब्ध है। विज्ञानभिक्षुकृत 'सांख्य प्रवचन भाष्य' और नागेशभट्ट रचित लघुसांख्यसारवृत्ति भी महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

सांख्य दर्शन का उद्देश्य

भारतीय दर्शन के कई समंतों की तरह सांख्य दर्शन का उद्देश्य भी दुःखों से निवृत्ति प्राप्त करना है तथा इसके लिये आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। आत्म के विषय पर जितना अच्छा तथा स्पष्ट वर्णन सांख्य दर्शन में किया गया है उतना वेदांत दर्शन के अतिरिक्त किसी अन्य दर्शन ने नहीं किया है। सांख्य नाम आत्मा के यथार्थ ज्ञान के अर्थ में पड़ा है। इसको विवेक बुद्धि कहा गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार आत्मा पर अविद्या का आवरण पड़ा हुआ है। जिसके कारण वह अपने यथार्थ तथा शुद्ध चैतन्यमय नित्य स्वरूप को देख नहीं पाती। जब तक आत्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है तब तक मोक्ष असंभव है। जीवको यह ज्ञान हो जाना चाहिये कि आत्मा त्रिगुणातीत है, तीनों गुणों से परे है तथा अविद्या त्रिगुणी है। सांख्य दर्शन से यह विवेक–बुद्धि मिलती है। इसी कारण उसका नाम सांख्य पड़ा। प्राचीन कहावत भी है, ''यथार्थ ज्ञान तो सांख्य में ही है।'' साधक, जिज्ञासु, विद्वान आदि जो भी दुःखों का निवारण चाहते हैं, उनको आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है, जिसके बिना न दुःखों से निवृत्ति और न ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान वेदांत तथा सांख्य दर्शन में ही उपलब्ध है। गीता में कहा गया है कि ज्ञान की तरह पवित्र वस्तु इस संसार में अन्य कोई नहीं है, आगे कहा गया है कि ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य जल्दी ही सच्चाई तथा सर्वोत्तम शांति को प्राप्त करता है। आत्मा के ज्ञान से ही अज्ञान नष्ट हो सकता है। शरीर तथा मन की सारी गंदगी ज्ञान से धुल सकती है, तथा जीवात्मा को पुनर्जन्म के बंधनों से मुक्ति मिल सकती है। इसलिये मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, इसलिए अनादिकाल से ही मनुष्य सांख्य का अध्ययन करते आ रहे हैं।

बंध और मोक्ष

सांख्य सैद्धांतिक है जो तत्व–मीमांसा की समस्याओं पर विचार करता हैं इस सांख्य शब्द तक की व्युत्पत्ति संख्या से हुई है। सांख्य का अर्थ होता है ज्ञान, बुद्धि, सम्यक ज्ञान इत्यादि। विद्वानों का मत है कि चूँकि सांख्य यह मानता है कि मोक्ष पुरूष और प्रकृति के विवेक ज्ञान से ही प्राप्त होता है अतः इसका नाम सांख्य पड़ा। तो गुणरत्न का विचार है कि सांख्य का नामकरण उसके आदि प्रवर्तक संख मुनि के नाम पर हुआ है। भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों, विशेषकर बौद्ध दर्शन के समान सांख्य भी दुःख की सार्वभौमिकता को स्वीकार करता हैं हमारा परम लक्ष्य सभी दुःखों से छुटकारा पाना है। और यह एकमात्र विवेक ज्ञान से ही संभव है। जो हमें मुक्ति दिला सकता है। इस संसार में दुःख का अस्तित्व है। मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ ऐसा अनुभव उसे प्रत्येक क्षण होता रहता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है कि वह दुःख से बचना चाहता है, उसके लिए वह हर संभव प्रयास भी करता है। किंतु इसमें उसे सफलता ही मिले यह आवश्यक नहीं है। साथ ही उस प्रयास अथवा उपाय के बाद पुनः दुःख की प्राप्ति नहीं होगी, यह भी संभव नहीं है। किसी विशेष दशा में कोई जीव दुःखों से कुछ काल के लिए छुटकारा पा भी जाये परंतु बुढ़ापा तथा मृत्यु ऐसे अवश्यम्भावी क्लेश हैं जिनसे कभी हमें छुटकारा मिल ही नहीं सकता। दुःख तीन प्रकार के होते हैं : 1. आध्यात्मिक, 2. आधिभौतिक और 3. आधिदैविक।

1. आध्यात्मिक

वे दुःख जो मनुष्य के मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होते हैं; उदाहरण के लिए मस्तिष्क तथा शरीर की विकृतियाँ। वैसे तो किसी भी प्रकार के दुःख का संबंध आत्मा से नहीं होत, क्योंकि पुरूष में दुःखों के मूल कारण सत्व, रज और तम् का अभाव रहता है अपितु ये मन, बुद्धि, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से युक्त शरीर में होते हैं। यह दो प्रकार का है।

1. **शारीरिकः** वात, पित तथा कफ इनकी विषमता के कारण उत्पन्न होने वाला दुःख जैसे ज्वर आदि।
2. **मनसिकः** काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय आदि भावों के कारण होने वाला दुःख।
3. **आधिभौतिकः** जिन्हें हम देख सकते हैं ऐसे बाह्य कारणों अथवा पदार्थों से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक कहलाता है। जैसे शेर, व्याघ्र, सर्प, मनुष्य आदि प्राणियों से उत्पन्न दुःख।

इन तीन प्रकार के दुःखों से मुक्ति प्राप्त करना मनुष्य का लक्ष्य है मोक्ष का अर्थ दुःखों से मुक्ति प्राप्त करना है और यही पुरूषार्थ है।

सांख्य पुरूष और प्रकृति के कठोर द्वैत का प्रतिपादन करता है। वे दोनों एक–दूसरे से पूर्ण रूप से भिन्न हैं। प्रकृति त्रिगुणों के साम्यावस्था का नाम है। वास्तव में सत्व, रज और तम ये तीनों द्रव्य रूप है। गुण, रूप नहीं जैसा कि प्रायः समझा जाता है। सत्व प्रकाशन का, रजोगुण सक्रियता का और चंचलता का तथा तमोगुण अप्रकाशन और निष्क्रियता का सिद्धांत है। जब प्रकृति पुरूष के सान्निध्य में आती है तो इस साम्यावस्था में विकास उत्पन्न होते है, जिसे 'गुण–क्षोभ' कहते है। यही ये विकास प्रारंभ होता है। प्रकृति से ही संसार के सभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। परंतु वह स्वयं किसी से उत्पन्न नहीं है। बल्कि पुरूष किसी पदार्थ को उत्पन्न करता है और न वह स्वयं किसी अन्य पदार्थ से उत्पन्न होता है। सांख्य दर्शन की शब्दावली में न वह विकृति है और न प्रकृति है।

सांख्य पुरूषों की अनेकता में इस आधार पर विश्वास करता है कि दैनिक जीवन के अनुभव यही सिद्ध करते हैं। परंतु यह अनेकता केवल संख्यात्मक ही है, गुणात्मक नहीं। गुणात्मक दृष्टि से सभी पुरूष समान हैं। एकात्मवाद के विरूद्ध सांख्य की यह आपित्त है कि यदि केवल एक ही पुरूष होता तो एक के मरण के साथ और सभी का जन्म और मरण हो जाता। इसी प्रकार एक पुरूष के बंधन या मोक्ष से सभी बंधन में पड़ जाते या मुक्त हो जाते। अतः सांख्य इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पुरूष अनेक हैं। चैतन्य पुरूष का आगुन्तक धर्म नहीं है। सांख्य दर्शन ईश्वर की सत्त में विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। वह संपूर्ण जगत्–व्यापार की व्याख्या बिना ईश्वर की सहायता से करता है। यदि ईश्वर से विश्व की उत्पत्ति शक्ति छीन ली जाती है तो वह शक्ति और महत्व खो बैठता है, जेसा कि उसकी स्थिति योग दर्शन में है। अतः यही प्रतीत होता है कि प्राचीन सांख्य निरीश्वरवादी है।

सांख्य के अनुसार बंधन का कारण अविद्या है या अज्ञान है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है। पुरूष अपना वास्तविक स्वरूप, कि वह पुरूष है भूल जाता है और स्वयं को प्रकृति या उसका कोई विकास समझने लगता है। यही उसका अज्ञान है। दूसरे शब्दों में कहें तो पुरूष का पुरूष और प्रकृति के बीच विवेक न कर पाना ही अज्ञान है। पुरूष का प्रतिबिम्ब न समझकर, स्वयं के प्रतिबिम्ब के साथ दोषपूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है। यही उसका बंधन है। जब पुरूष को बिम्ब और प्रतिबिम्ब के बीच, पुरूष और प्रकृति बीच भेद का ज्ञान हो जाता है तो वह मोक्ष या कैवल्य प्राप्त कर लेता है। अर्थात् जब पुरूष को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि वह पुरूष है, न कि प्रकृति और न उसका कोई विकास है, तो उसके बंधन का कारण नष्ट हो जाता है और वह मुक्त हो जाता हैं वह स्वयं को अब तक बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियाँ आदि समझ रहा था। उसका यह भ्रम–ज्ञान ही उसका बंधन था और इसी की समाप्ति उसका मोक्ष है।

प्रकृति और पुरूष के बीच संयोग कभी होता ही नहीं है। संयोग की केवल प्रतीति होती है यह प्रतीति अनादि है। पुरूष प्रकृति का संयोग केवल भ्रम है। जब यह भ्रम दूर हो जाता है तो ज्ञान की तत्क्षण की प्राप्ति हो जाती है कि दोनों के बीच कभी वास्तविक संयोग था ही नहीं। भागवतपुराण में एक स्थान पर कहा गया है कि पुरूष और प्रकृति का संयोग केवल देवमात्र है। प्रकृति के दृष्टिकोण से यह संयोग और पुरूष के दृष्टिकोण से केवल लीला है।

सांख्य के अनुसार बंधन तीन प्रकार के हैं – 1. प्राकृति बंध, 2. विकासात्मक बंध, 3. व्यक्तिगत बंध। बंधन का यह विभाजन उपास्य पदार्थों के आधार पर हुआ है। पुरूष स्वयं का जिन पदार्थों के साथ दोषपूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है उसी प्रकार का उसका बंधन कहा जाता है। वे पुरूष जो प्रकृति को आत्मा या पुरूष जानकर पूजा करते हैं तो यहकहा जायेगा कि वे प्राकृतिक बंधन में पड़े हैं। उन्हें विकासात्मक बंधन से बंधे कहेंगे जो प्रकृति के विभिन्न विकारों को उदाहरण के लिए पंच महाभूत ज्ञानेन्द्रियाँ आदि का आत्मत्व या पुरूष समझकर पूजते हैं। जो लोग यज्ञ करते हैं या दान देते हैं वे भी पुरूष को वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। यह कहा जाता है कि लोग व्यक्तिगत बंधन में बंधे हैं। क्योंकि ये व्यक्तिगत ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हैं। कपिल मोक्ष के स्वरूप के विषय में विशेष चर्चा नहीं करते। भगवान बुद्ध के समान कपिल का भी मुख्य उद्देश्य सांसारिक दुःखों की उत्पत्ति का कारण और उनके निवारण के उपाय बतलाना है। परंतु इनके शिष्यों ने मोक्ष के स्वरूप के विषय में विचार किया। बंधन का एकमात्र कारण यह है कि पुरूष स्वयं को वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। वह स्वयं का प्रकृति या उसके विकारों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। यही उसका बंधन है। जब अपने स्वरूप के सम्यक ज्ञान से उसका दोषपूर्ण तादात्म्य समाप्त हो जाता है तो पुरूष तत्क्षण प्रकृति केपंजे से मुक्त हो जाता है। मोक्ष की स्थिति में पुरूष स्वयं को प्रकृति या उसके विचारों से भिन्न, अपने स्वरूप का केवल वही अकेला है, ऐसा अनुभव करता है। दोषपूर्ण तादात्मक समाप्त हो जाने पर केवल अपने ही स्वरूप मे स्थित हो जाता है, और प्रकृति तथा उसके विकास को तटस्थ भाव से देखता रहताहै। अतः मोक्ष की स्थिति को सांख्य में कैवल्य भी कहा यागया है।पुरूष नित्य मुक्त है विवेक ज्ञान के उदय के पूर्व भी पुरूष मुक्त ही था विवेक ज्ञान के उदय होने पर उसे केवल यह ज्ञान होता है कि वह तो कभी बंधन में पड़ा ही नहीं था, सदैव से मुक्त ही था। परंतु उसे इस तथ्य का ज्ञान इसलिए नहीं था कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया था, और स्वयं को प्रकृति या उसका विकार समझ रहा था। यह भ्रम तथा दोषपूर्ण तादात्म्य ही अज्ञान है बंधन है। कैवल्य और कुछ नहीं केवल वास्तविकता का ज्ञान है। कैवल्य की प्राप्ति रज्जु–सर्प भ्रम के दूर होने की स्थिति के समान है दूसरे शब्दों में कैवल्य में पुरूष को अपने वस्तुतः शासक होने का ज्ञान प्राप्त होता है, जो कि वैधानिक रूप से वह सदैव सेथा।

विवेक–ज्ञान का स्वरूप

सांख्यकारिका कहती है कि विवेक–ज्ञान के स्वरूप को मैं नहीं हूँ, मेरा कुछ नहीं है, मैं नहीं हूँ। इत्यादि शब्दों द्वारा प्रकट कर सकते हैं।

एवं तत्वाभ्यायान् नास्मि, न मे, नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।। सां.का. 64

''मैं नहीं हूँ'' का अर्थ यह नहीं है कि मैं अर्थात पुरूष की सत्ता नहीं है। उसा वास्तविक अर्थ यह होता है कि मैं अब वह नहीं हूँ जो मैं बंधन की अवस्था में भ्रमवश स्वयं को समझ रहा था। बंधन की स्थिति में मैं अपने वास्तविक स्वरूप को पूर्ण रूप से भूल गया था, और प्रकृति तथा उसके विचारों के साथ मैंने तादात्म्य स्थापित कर लिया था। अब मुझे यह ज्ञान हो गया है कि मैं न प्रकृति हूँ और न अन्य कोई विकार ही। अब मैंने, वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मेरा कुछ नहीं है। का अर्थ है कि मेरी वर्तमान अन्तर्वस्तु का स्वरूप उससे पूर्व से भिन्न है जो मैं बंधन की अवस्था में समझ रहा था। वे अन्तर्वस्तुएँ मेरी नहीं हैं जिन्हें मैं बंधन की अवस्था में अपनी समझा रहा था। मैं (अहम्) नहीं हूँ का अर्थ मैं अब समाप्त हो गया हूँ। न होकर मैं स्वार्थी अहम्वादी नहीं हूँ यह है मेरे स्वार्थी व्यक्तित्व का रूपांतरण सार्वभौमिक व्यक्तित्व में हो गया है और मैं मुक्त आत्मा हूँ का ज्ञान होता है।

जब पुरूष विवेक–ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसी के साथ उसे यह भी ज्ञान हो जाता है कि वह नित्य मुक्त ही था। सांख्य का विश्वास है कि प्रकृति के विकास का लक्ष्य पुरूष का मोक्ष ही विवेक ज्ञान के उदय होने पर प्रकृति का कार्य उसे विशेष पुरूष के लिए समाप्त हो जाता है और आगे वह उसके लिए कार्य करना बंद कर देती है। पुरूष सोचता है कि मैंने उसे देख लिया है, अतः उसको विकास में सब रूचि समाप्त हो जाती है। प्रकृति भी सोचती है कि मैं देख ले रही हूँ अतः वह उस विशेष पुरूष के लिए कार्य करना बंद कर देती है और यद्यपि पुरूष और प्रकृति का संयोग अब भी रहता है, प्रकृति का कोई उद्देश्य शेष नहीं रहता। प्रकृति इतनी अधिक शर्मिली है कि वह मुक्त पुरूष के सम्मुख, अर्थात उस पुरूष के सम्मुख जिसने उसे देख लिया है दुबारा कभी नहीं आती। अर्थात विवेक–ज्ञान के प्राप्ति के बाद पुरूष प्रकृति फिर कभी अपने बंधन में बाँधने का प्रयास नहीं करती। जिस प्रकार नर्तकी दर्शकों का मनोरंजन करके रंगमंच से चली जाती है ठीक उसी प्रकार प्रकृति किसी विशेष पुरूष के मोक्ष प्राप्त कर लेने पर उसके सामने से हट हाती है।

सांख्य जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दोनों को ही स्वीकार करता हैं जिस प्रकार कुम्हार चेक्के को घुमाना बंद कर देता है फिर भी वह कुछ समय तक घूमता रहात है, टीक उसी प्रकार विवेक–ज्ञान का उदय हो जाने पर भी पुरूष प्रारब्ध कर्मों को समाप्त करने के लिए कुछ समय तक उस शरीर में बना रहता है। समय पुरूष यद्यपि शरीर में रहता है। तथापि शरीर में उसकी सब रूचि समाप्त हो जाती है। अतः अब शरीर द्वारा किये गये कर्म उसको बाँध नहीं सकते। यही जीवन्मुक्ति हो जब भोग से प्रारब्ध कर्म भी समाप्त हो जाते हैं तो पुरूष इस शरीर को छोड़ देता है और नित्य तथा पूर्ण कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। वह प्रकृति और प्रकृति के विकारों से मुक्त हो जाता है। अब वह प्रकृति को देखता तो है परंतु उससे भ्रमित नहीं होता।

इस संबंध में एक अच्छा प्रश्न सामने आता है कि कैवल्य की प्राप्ति में कौन किसे छोड़ता है? जब उनका विच्छेद हो जाता है तो वे दोनों एक दूसरे को छोड़ते हैं। परंतु सांख्य दर्शन में यह प्रश्न इतना साधारण नहीं है। पुरूष सब प्रकार के गुण–विकारों से रहित है वस्तुतः निष्क्रिय है। प्रकृति के क्रियाकलापों का केवल साक्षी है। तो वह प्रकृति को कैसे छोड़ सकता है ? वह कार्ता नहीं हो सकता सच तो यह है कि कोई पुरूष न बंधन में पड़ता है और न उसको पुनर्जन्म को प्राप्त होती है और मोक्ष का लाभ करती है। बंधन पुनर्जन्म, मुक्ति पुरूष पर उसी प्रकार आरोपित की जा सकती है जिस प्रकार व्यवहार में जय और पराजय राजा पर आरोपित करते हैं। यद्यपि यह प्राप्त सैनिकों को ही होती है। स्वयं प्रकृति ही स्वयं को बाँधती और मुक्त करती है। स्पष्ट है कि पुरूष का बंधन और मोक्ष केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही सत्य है पारमार्थिक दृष्टि से नही। परमार्थ तो यह है कि पुरूष नित्य मुक्त है।

सांख्य के अनुसार पुरूष का मोक्ष उसके कैवल्य ज्ञान में निहित हैं यह ज्ञान प्राप्त करना ही उसका मोक्ष है कि वह न प्रकृति है और न विकृति। उसका स्वरूप त्रिगुणातीत हैं वह दुःखी तो है ही नहीं सुखी भी नहीं है क्योंकि सुख या आनंद भी प्रकृति का विकार है। कैवल्य या मोक्ष में पुरूष केवल अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्य का लाभ करते हैं। सभी धर्मों का त्याग कर देता है क्योंकि सभी प्रकृति के विकार हैं। सांख्य का पुरूष मोक्ष की स्थिति में शुद्ध चैतन्य या सर्वज्ञाता का अनुभव करता है। यह उसका अंतःस्थ स्वरूप है। सांख्य के अनुसार आनंद सत्व से उत्पन्न है और सत्वगुण प्रकृति का घटक है अतः पुरूष को उससे भी मुक्त हो जाना चाहिए।

मोक्ष प्राप्ति के साधन

सांख्य के अनुसार वैदिक यज्ञ अहिंसा के नियम का उल्लंघन करते हैं। जब यज्ञ किया जाता है तो हम स्वर्ग प्राप्ति करा सकते हैं। जहाँ से पुण्यों से क्षय होने पर साधक को लौटना पड़ता है। यह कर्मकाण्ड विवेक ज्ञान के उदय में सहायक नहीं होते। विवेक ज्ञान को ही मोक्ष स्वीकार करने के कारण कर्मों के प्रति सांख्य का दृष्टिकोण प्रायः वैसा ही है जैसा कि शंकर का है। शुभाशुभ कर्म हमें क्रमशः स्वर्ग और नरक की प्राप्ति करा सकते हैं। कैवल्य की प्राप्ति नहीं। कैवल्य अज्ञान दूर होना है, क्योंकि केवल ज्ञान के उदय होने से भी संभव है। बंधन का कारण अज्ञान है और इसका नाश केवल ज्ञान प्राप्ति से ही होता है। ज्ञान और केवलज्ञान से ही कैवल्य प्राप्त होता है। सांख्य के अनुसार अष्टांग योग का अभ्यास विवेक ज्ञान के उदय में सहायक है। पुरूष और प्रकृति में द्वैत ज्ञान ही कैवल्य है।

संदर्भ

1. भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम 1993, राजकुमारी पान्डेय राधा पब्लिकेषन–नई दिल्ली
2. भारतीय चिंतन का इतिहास, सिस रिसर्च पब्लिकेषन इन स्पेषल सांइस दिल्ली, योग दीपिका – बी. के. एस
3. यंगार–1983 ओरियंट, लांग्मेन लिमिटेड दिल्ली
4. योग दपर्ण – स्वामी दिव्यानंद सरस्वती
5. हठयोग उद्गम विकास और वर्तमान समस्याओं के परिपेक्ष्य में हठयौगिक प्रक्रियाओं का संभाव्य स्थान
6. परमानंद पटेल–1989
7. योग और आयुर्वेद–आचार्य राजकुमार जैन ,नई दिल्ली–1977
8. साधन पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान–1998, आचार्य श्री राम षर्मा हरिद्वार .
1. सिद्ध संत और योगी–षम्भूरत्न त्रिपाठी